संपादकीय

नव वर्ष आरंभ होने वाला है, किसानों ने अपनी शीतकालीन फसलें उगा दी हैं लेकिन उन्हें पिछले कुछ वर्षों की चिंताऐं अब भी सता रही हैं। सरकार प्रगति दिखाने के प्रयास में निराश है और ऐसा बजट प्रस्तुत करना चाहती है जिससे किसानों की चिंताओं का समाधान हो सके। सरकार को विरासत में कृषि अर्थव्यवस्था मिली है और कृषि क्षेत्र पतन की ओर है, इस कारण सरकार किसानों से परामर्श कर रही है।

उर्वरक के क्षेत्र में 2 प्रमुख समस्याऐं हैं। यूरिया का मूल्य बढाकर आर्थिक सहायता कम करने और इसके असंतुलित उपयोग को रोकना तो दूसरी तरफ डी.ऐ.पी. के मूल्यों को कम करना। उर्वरक पर सब्सिडी में अधिक कमी करने के लिऐ सरकार ईरान में एक नया उर्वरक संयंत्र या फैक्ट्री बनाने के लिऐ प्राकृतिक गैस के ठेके लेने पर विचार कर रही है। इसका अर्थ है कि 'भारत में निर्मित' के विकल्प के रूप में 'भारत के लिऐ' निर्मित पद्धति अपनाकर सरकार किसानों की सहकारी संस्थाओं जैसे ईफको से कहती है कि विदेशी भूमि या तटों पर प्लांट लगाऐ। कच्चे तेल की कीमतों में ऐतिहासिक कमी हो रही है जो 20 अमरीकी डॉलर प्रति बैरल तक गिर चुकी हैं। ईरान शायद भारत के अनुरोध को स्वीकार न करे क्योंकि भारत ने ईरान की आर्थिक सहायता पर पाबंदी आदि का विरोध नहीं किया। पुरानों दोस्तों को छोड़कर नऐ साथियों को चुनना आत्महत्या करना जैसा ही होता है। इससे हमारी वकालत का निचोड़ सिद्ध होता है कि किसानों की आजिविका, खेतों पर वो जितनी मेहनत करते हैं, उस पर निर्भर नहीं है किंतु नीति निर्माता वातानुकुलित कार्यालयों में बैठकर जो नीतियां बनाते हैं उन पर निर्भर करती हैं।

इसी प्रकार से व्यापार वार्तालाप में हमारी समझ कार्य नहीं कर रही है, भारत के कमजोर रूख ने पिछले एक दशक में अन्य देशों को अवसर दिया कि वह द्विपक्षीय करारों पर हस्ताक्षर करें जैसे टी.टी.आई.पी., जिसमें हम अपने अधिशेष उत्पादों की बिक्री के बाजार नहीं ढूंढ पाऐंगे। देश की सरकार आज भी खाद्य सुरक्षा की अतीत की चिंता से परेशान है जबकि एक किसान अपने अधिशेष उत्पादों की बिक्री की समस्या का सामना कर रहा है। हमारे किसानों द्वारा अधिक मात्रा में उत्पादन करने में सबसे बडी रूकावट नीति निर्माताओं की असमर्थता है कि न तो वे बेहतर नीति तैयार कर पाते हैं न ही मौसम की भविष्यवाणी। यदि किसानों पर विश्वास किया जाऐ तो किसान अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर सकते हैं जिसके लिऐ निर्यात बाजारों की आवश्यकता है और साथ ही सरकार को किसानों के पक्ष में करार करने की आवश्यकता है। अन्यथा हम आने वाले समय में भी खाद्य सुरक्षा के लिऐ अनाज और जनवितरण कार्यक्रमों तक ही सीमित रह जाऐंगे। हमारे सभ्य समाज में बहुत से लोग ऐसे हैं जो खेती के बारे में कुछ नहीं जानते और वह नीति या प्रस्ताव तैयार करते हैं, इस कारण हमें वार्तालाप में भाग लेने से परहेज करना पड़ता है क्योंकि किसानों के लिऐ यह नीतियां उतनी ही विनाशक हैं जितनी गन्ने के खेतों के लिऐ जंगली सुअरों का आक्रमण होता है।

यदि हमें लगता है कि भारत में खाद्य सुरक्षा की समस्या है तो अन्य प्रयासों से इन्हें दूर किया जा सकता है। हम फसलों की आवश्यकता अनुसार पानी की जरूरत के बारे में सोच सकते हैं और उन फसलों को प्रोत्साहन दे सकते हैं जिनके लिऐ कम पानी की आवश्यकता हो तथा विशेष बल इस पर दिया जाऐ की 1 एकड़ सिंचाई से कितनी कैलोरी प्राप्त की जा सकती है।

मक्का की फसल प्रति एकड़ 7.5 मिलियन कैलोरी, चावल 7.4 मिलियन और गेहूं केवल 3 मिलियन कैलोरी प्रदान करता है, जबकि शक्करकंदी 10.3 मिलियन कैलोरी प्रति एकड़ दे सकती है और यह घटिया मिट्टी और अनियमित वर्षा का भी सामना कर सकती है। आलू 9.2 मिलियन कैलोरी प्रति एकड़ देता है और इसे किसी भी

अच्छे सिंचित क्षेत्र में उगाया जा सकता है और पाले का भी इस पर असर नहीं होता। हरित क्रांति के कार्यों में हम अन्य संभावित विकल्प तलाश ही नहीं पाऐ। वास्तव में आलू के लिऐ केवल 30 गैलन पानी जबकि मक्का के लिऐ 107 गैलन और चावल के लिऐ 403 गैलन पानी की आवश्यक्ता होती है। इसमें विविधिकरण लाने की अति आवश्यकता है।

घी या बटर ऑयल रू. 170/– प्रति कि.ग्रा. की दर से आयात किया जा रहा है। इसमें शुल्क और परिवहन लागत मिलाकर इसका मूल्य रू. 250/– हो जाऐगा, जबकि भारतीय किसान को रू. 380/– प्रति कि.ग्रा. मिल रहे हैं। भारतीय किसान सब्सीडाईजड आयातित दूध उत्पादों का किस प्रकार मुकाबला कर पाऐगा। निश्चित रूप से यह प्रक्रिया भारतीय दूग्ध उद्योग को नष्ट कर देगी। इसके अतिरिक्त, महाराष्ट्र में किसान पशुओं की सस्ती दर पर बिक्री कर रहे हैं और वहां दूध की भरमार है निजी दूग्ध कंपनियां किसानों से केवल रू. 16/– प्रति लीटर की दर से दूध खरीदती हैं जबकि गुजरात के किसान सहकारी संस्थाओं के माध्यम से दूध की बिक्री पर औसतन रू. 40/– प्रति लिटर प्राप्त कर रहे हैं। यह सब देखते हुऐ सरकार को अपनी नीतियों पर पुर्नविचार करने की आवश्यकता है।

खेती की सौतेली संतान : भूमिहीन किसान और महिलाऐं

कविता कुरूगंती – नैशनल कनवीनर ऑफ अलाईंस फॉर सस्टैनेबल ऐण्ड हॉलिस्टीक ऐग्रीकल्चर

वास्तव में संस्थागत ऋण न तो उन किसानों को पहुंच रहा है जिनके नाम भूमि नहीं है और न ही किसान महिलाओं को, यह सभी जानते हैं।

तेलंगना और आंध्र–प्रदेश जैसे राज्यों ने पट्टेदार किसानों के लिऐ विधिक उपाय (उदाहरण के लिऐ अविभाजित आंध्र–प्रदेश में) किऐ हैं। लाईसेंसड कृषक अधिनियम के अंतर्गत राजस्व विभाग ग्राम सभा स्तर पर विभिन्न गांव में पट्टेदारों की पहचान करता है, हालांकि कुछ मुद्दे पहचान करने से भी ताल्लुक रखते हैं जैसे भूमि मालिक नहीं चाहते कि उनके किराऐदारों की पहचान की जाऐ। भूमि मालिकों में यह डर है कि किराऐदारी कानून से उन्हें अपनी भूमि खोनी पड़ सकती है। कई वास्तविक चुनौतियों के पश्चात भी ये पहचान पत्र, जिन्हें ऋण पात्रता कॉर्ड या ऐल.ई.सी. कहा जाता है, कई कठिनाईयों के बाद भी जारी किऐ जा रहे हैं। किंतु, इन पहचान पत्रों के होते हुऐ भी बैंक इन्हें ऋण नहीं देते क्योंकि उनकी अपनी सीमाऐं और भय है।

सच्चाई यह है कि सरकार और अन्य संस्थाऐं केवल बैंकों या अन्य ऋण देने वाली संस्थाओं के लिऐ ही पेपरवर्क करती है। पहचान पत्र सर्वेक्षण संख्या आधारित, भूमि स्वामी – पटट्ेदार आधारित और फसल आधारित होते हैं। उदाहरण के लिऐ तेलंगना में कुल ऋण का केवल 0.1 प्रतिशत पट्टेदार किसानों को जाता है जबकि ऐन.ऐस. ऐस.ओ. सर्वेक्षण के अनुसार किराऐदारी का भाग 30 से 32 प्रतिशत तक है। समस्त भारत में 70वें दौर में कहा गया है कि लगभग 10 प्रतिशत किसान परिवार पटट्े की भूमि पर काम करते हैं जबकि वास्तव में यह संख्या बहुत अधिक होगी। समस्या यह है कि कुछ राज्य सरकारों द्वारा पहचान पत्र बनाने के उपाय करने के पश्चात भी बैंक या ऋण देने वाली संस्थाऐं किराऐ या पट्टेदार किसानों को ऋण नहीं दे रही है।

इसी संदर्भ में 'भूमिहीन किसान क्रेडीट' का मुद्दा भी है जिसके अंतर्गत संयुक्त देयता समूह (जे.ऐल.जी.) बनाने के लिऐ लगभग रू. 2,000/– दिया जाता है। जे.ऐल.जी. बनाने की सुविधा को बैंक और इस संयुक्त समूह दोनों के हित में हल्के में नहीं लिया जाना चाहिऐ। जे.ऐल.जी. बनाते समय अधिकतम निवेश वास्तविक भागीदारों / किसानों तथा संस्थाओं को बनाऐ रखने में किया जाना चाहिऐ। किसान उत्पादक संस्थाऐं जो नबार्ड द्वारा अपने संशोधित अनुदान योजना के माध्यम से बनाई गई हैं, उनमें 3 वर्ष की अवधि तक ऋण दिया जाता है। ऐसी ही प्रक्रिया संयुक्त देयता समूह के लिऐ भी होनी चाहिऐ, यदि इन समूहों को भूमिहीन किसान ऋण योजना से लाभ मिले तो चालू / विद्यमान योजनाओं को शीघ्र बदल देना चाहिऐ।

उपरोक्त के अतिरिक्त तेलंगना और आंध्र–प्रदेश जैसे राज्यों में लाईसेंसड कल्टीवैटर्स ऐक्ट और पहचान पत्र पद्धति के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी या इसके उपयोग के बारे में पता है, इसके लिऐ आवश्यकता है कि भारतीय रिजर्व बैंक सभी बैंकों को निर्देश दे की वे ऐसे नऐ दिशा निर्देश तैयार करें जिनसे राज्यों द्वारा जारी किऐ गऐ सभी लाईसेंस और पहचान पत्रों के आधार पर किसानों को ऋण मिल सके। एकसमान परिपेक्ष्य और कृषि के प्रति गंभीर निराशा को कम करने के लिऐ सच्चाई जानने हेतु हमने तेलंगना राज्य के अध्ययन के पश्चात जाना कि इस राज्य में जिन किसानों ने आत्महत्याऐं की हैं उनमें 80 प्रतिशत ऐसे किसान थे जिनके पास वास्तव में पट्टे पर ली हुई भूमि थी। यदि कृषि संकट का समाधान करना है तो सर्वप्रथम सरकार को किराऐदारी की समस्या का मूल्यांकन करना होगा और यह भी जांचना होगा की संस्थागत ऋण की कमी के कारण कृषि स्थिति कितनी बिगड़ती जा रही है।

महिला किसानों के साथ भी इसी प्रकार की गंभीर समस्याऐं हैं। कृषि क्षेत्र में बढती हुई महिलाओं की भागीदारी की घटनाओं से देखा जा सकता है कि जनगणना के अनुसार लगभग 36 मिलियन किसान हैं और देश में इस संख्या का 30 प्रतिशत भाग महिला किसानों का है। ये महिलाऐं संस्थागत ऋण से वंचित रहती हैं क्योंकि उनके पास संपत्ति या भूमि के अधिकार नहीं होते।

अधिकतम महिला किसान चाहे उनके पास भूमि है या तो वे छोटी महिला किसान या मझौली महिला किसान हैं, उन्हें या तो जे.ऐल.जी. अथवा ऐस.ऐच.जी. वर्ग के अंतर्गत अनिवार्य रूप से लाया जाना चाहिऐ।

एक अन्य तथ्य यह है कि बड़े स्तर पर वित्त की आवश्यकता है, क्योंकि 1 एकड़ भूमि का किराया रू. 30,000/– से रू. 35,000/– तक है। यह प्रक्रिया भूमिहीन किसान योजना के अंतर्गत नहीं आती है, क्योंकि यह योजना नियमित किसान क्रेडिट कार्ड के समान तैयार नहीं की गई है। वास्तव में प्राथमिक सूचना से यह देखा जा सकता है कि जहां–जहां जे.ऐल.जी. विद्यमान है उन्हें दी गई वित्त की मात्रा बहुत कम है। इस प्रकार पट्टेदार किसानों और महिला किसानों के इस मुद्दे को सक्रिय रूप में हल करने की आवश्यकता है।

ऐफ.पी.ओ. के मामले में भी, अर्थात किसान उत्पादक संस्थाऐं भी आशा करती हैं कि पहले दिन से ही उनका कारोबार बढ़ाया जाऐ। इनके अंतर्गत उद्योग ऋण का पुनर्भुगतान करने के लिऐ कोई प्रतिबंधित अवधि नहीं है। यदि किसी ऐफ.पी.ओ. द्वारा ऋण लेने के बाद उसका मूल्य विकसित होता है और ब्रांड चमकने लगता है तो भी एक वर्ष की अवधि में यह बाजार में अपने लिऐ स्थान नहीं बना सकती। ऋण देने की योजनाओं के अंतर्गत पुनर्भुगतान अवकाश का समय अवश्य होना चाहिऐ, उसके पश्चात किश्तें या पुनर्भुगतान की अवधि आरंभ की जानी चाहिऐ।

अंत में, पशुपालन ऋण का अंश गिरकर केवल 4 प्रतिशत रह गया है। यह भलिभांति जाना जाता है कि भारत में गौण भूमिधारक और मझौले भूमिधारक अपनी आय का महत्वपूर्ण भाग पशुपालन से अर्जित करते हैं। पशुपालन भी कृषि क्षेत्र का एक भाग है और इस क्षेत्र के लिऐ भी विशिष्ट ऋण आबंटन करने पर विचार की आवश्यकता है।

भारत देश के समस्त क्षेत्र में निष्पक्ष ऋण आबंटन की अति आवश्यकता है, न कि छोटे या गौण और मझौले किसानों के लिऐ कम ऋण देने की योजना।

'किसान दिवस'

पिछले सप्ताह मैं यू.सी.ऐल.ऐ. के भ्रमण पर आऐ ऐम.बी.ऐ. विधार्थियों को संबोधित कर रहा था और बता रहा था कि भारत में किसानों की सबसे बडी समस्या यह है कि देश के नीति निर्माण करने वालों में उनका कोई नेता या प्रतिनिधि नहीं है। बुद्धिमान विधार्थियों ने तुरंत एक प्रश्न पूछा, 'एक ऐसे देश में जिसका मुख्य व्यवसाय कृषि है और लगभग 40 प्रतिशत लोग कृषि पर ही निर्भर हैं उस देश में ऐसा कोई भी नेता नहीं जो उनकी समस्याओं को जान सके और किसानों का प्रतिनिधित्व कर सके।' यह एक अच्छा प्रश्न था जिस पर 'किसान दिवस' के अवसर पर चिंतन करना चाहिऐ। हमारे महान किसान नेता चौधरी चरन सिंह जी की 23 दिसंबर, 2015 को जयंती थी, जिसे किसान दिवस के रूप में मनाया जाता है।

एक जाट के रूप में पैदा हुऐ चौधरी चरन सिंह जी उत्तर–प्रदेश के हापुड जिले मैं जन्मे थे और वे ऐसे किसान नेताओं में से थे जिन्हें जाति की वजह से नहीं बल्कि ग्रामीण लोगों के नेता के रूप में जाना जाता था। कई अन्य योद्धा भी किसान नेता के रूप में जाने जाते हैं जैसे संयुक्त पंजाब में सर छोटू राम, महाराष्ट्र में डॉ० पंजाबराव देशमुख जी, राजस्थान में श्री बलदेव राम मिर्धा और आंध्र–प्रदेश में श्री ऐम.डी. नन्दुनजास्वामी आदि।

चौधरी चरन सिंह जी ने किसान समाज और जात–पात रहित क्षत्रिय समाज के अहिर, जाट, गुज्जर, राजपूत और मुस्लिम समाज की कमजो एकता को एक धागे में पिरोया था। मेरा मानना है कि इन सभी जाति या क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर ग्रामीण समाज ने चौधरी चरन सिंह में अपनी आवाज और नेता पाया था। उन्होंने पट्टेधारी किसानों के शोषण को रोकने के लिऐ भूमि सुधार शुरू किऐ थे।

वे भारत के प्रधानमंत्री के पद तक पहुंचे लेकिन बहुत कम अवधि के लिऐ। वे देश की मजबूत राजनीतिक जड़ों और अन्य परिस्थितियों से भलीभांति परिचित थे। उस समय के बड़े–बड़े राजनैतिक नेता एक किसान नेता के इतने बडे पद पर बैठना पसंद नहीं कर पाऐ, क्योंकि राजनीति में विभिन्न विचारधाराओं के अलग–अलग वर्गों के लोगों में सामान्यता ऐसा स्पष्टवादी व्यक्ति पसंद नहीं किया जाता था। वे न तो क्मयूनिस्ट, समाजवादी, उदारवादी न ही पूंजीवादी थे।

उनका देहांत वर्ष 1987 में हुआ। उसके पश्चात किसानों की एकजुटता समाप्त होने लगी और भारतीय राजनीति में कोई किसान नेता भी नहीं रह गया। किसानों के आंदोलन के असफल होने में 2 प्रमुख घटनाओं का योगदान रहा, एक तो मंडल कमिशन और दूसरा पंचायती राज। इसके पश्चात राजनीति ही बदल गई। मंडल आयोग के विरोध से जो राजनीति की परिस्थितियां उत्पन्न हुई, उनसे ग्रामीण समाज जातिय आधार पर बंट गया। जिन नेताओं ने जातिगत विभाजन को तोड़ना चाहा या केवल अपनी जाति के लोगों के लिऐ ही प्रतिनिधित्व नहीं किया उन्हें न केवल अपने समाज का समर्थन खोना पडा बल्कि अन्य जातिय या वर्गों ने भी उन्हें सहयोग नहीं दिया। जहां तक कि गुजरात में हार्दिक पटेल जैसे लोग भी उसी परिवर्तन की उपज हैं। ऐसे लोग किसानों की एकता में बडी बाधा बनते हैं।

भारतीय संविधान में बहुदल प्रथा व्यापत है, जिसके अंतर्गत एक ही पद के लिऐ कई उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने की अनुमति है। इस कारण किसी भी गांव में कुछ वर्षों में होने वाले कुछ पंचायत सदस्यों के चुनाव में ही कम से कम 20 – 25 उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक गांव बहुराजनीति पद्धति के आधार पर बंट चुका है। यह प्रक्रिया किसानों की एकता को नष्ट करने का आभास थी और इसका प्रमुख कारण तब से नजर आ रहा है जबसे मंडल आंदोलन हुआ था और देश में किसानों की एकता अस्थिर होती चली गई।

प्रत्येक चुनाव में नऐ–नऐ उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं और एक दिन भी काम किऐ बिना वे ग्रामीण वोट प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरण के लिऐ विधानसभा के चुनाव में एक उम्मीदवार को किसी विशेष गांव के गुट का समर्थन मिलता है तो दूसरे गांव का गुट पहले गुट का विरोध करते हुऐ अपने प्रतिद्वंदी उम्मीदवार का भी विरोध करता है जिस कारण उसके सहयोग से दूसरे उम्मीदवार की जीत हो जाती है। यह पद्धति किसी भी एक समूह को न तो विकसित होने देती और न ही सफल होने देती है। यदि कोई एक व्यक्ति चुनाव लडता है तो उसी के अन्य पांच समूह उसे हराने का प्रयास करने लगते हैं। वास्तव में, कोई भी जनआंदोलन राजनैतिक झुकाव के साथ सफल नहीं हो सकता।

वर्ष 1990 में उदारीकरण के युग में एक नए प्रकार का किसान नेतृत्व उत्पन्न हुआ जिसका झुकाव जाति पर आधारित था। यद्यपि ये नेता देहात से संबंधित थे किंतु उनकी आजीविका केवल खेती पर ही निर्भर नहीं थी। यह पीढ़ी शिक्षित, भद्र और कठोर तथा अपने स्वार्थों के लिऐ चुनाव लड़ रही थी। विजेता और पराजित के बीच प्रमुख पहलू धन का उपयोग रह गया। पुराने किसान नेता अथवा वास्तविक किसानों को राजनीति में आने का अवसर ही नहीं मिला और इस कारण धीरे–धीरे वे अशक्त होते गऐ।

इसी प्रकार से एक तरफ तो नऐ–नऐ टी.वी. चैनल शुरू हो गऐ और टी.वी. धारावाहिकों ने जो धन और प्रलोभन दिखाया उससे ग्रामीण युवा भी प्रभावित हुऐ बिना नहीं रह सके। दूसरी तरफ भूमि के टुकड़े हो रहे थे और खेती–बाड़ी लाभकारी नहीं रह गई, क्योंकि सरकार ने भी इस क्षेत्र पर ध्यान देना कम कर दिया। इस देश के पहले दशक में ही किसानों का गांव छोड़ना मानव इतिहास में बहुत बड़ी घटना बना। बड़ी संख्या में चुपचाप लोग गांव छोड़कर शहरों में आ रहे हैं। खेती को छोड़कर अन्य कारोबार में लोभ बढ़ चुका है। कोई भी भारत देश में खेती करने का इच्छुक नजर नहीं आता।

इसके पश्चात मनरेगा ने भी गांव की राजनीति में फूट डाल दी। मनरेगा के अंतर्गत मिलने वाली राशि का भुगतान गांव के सरपंच द्वारा किया जाता है। इससे गांव के लोगों में भी पंचायत के चुनाव लड़ने का लालच बढ़ा। पंचायत चुनाव एक ऐसा निवेश क्षेत्र बन गया जिसमें खर्च की गई राशि की भरपाई मनरेगा की निधि से की जाने लगी। यह इस तथ्य से देखा जा सकता है कि एक गांव के पंचायती चुनाव में खर्च की जाने वाली राशि विधानसभा के चुनाव में खर्च की गई राशि से 10 गुना तक हो गई है। कुछ पदों के लिऐ प्रचंड मुकाबले ने एकमात्र आशा भी समाप्त कर दी कि किसान एकजुट हो पाऐंगे।

आज लगभग सभी किसान परिवारों का कोई न कोई एक सदस्य खेती से अलग आय अर्जित कर रहा है और वह परिवार केवल कृषि धंधे पर ही निर्भर नहीं रह गया है। इस कारण भी किसान समुदाय में अलग–अलग विचार बन रहे हैं कि वे अपने आप को उत्पादक न मानते हुऐ उपभोक्ता अधिक मानने लगे हैं। इससे भी किसान एकजुटता की संभावना क्षीन्न होती जा रही है।

युवा नेताओं की नई खेप लोगों से इतनी कटी हुई है कि वे अभी भी किसानों के सामने खद्दर का सफेद कुर्ता पजामा पहनकर आते हैं। उन्हें यह भी ऐहसास नहीं कि आज के समय में सूती कुर्ता पजामा पहनना बहुत महंगा है और अधिकतम भारतीय इसे खरीद भी नहीं सकते। इसे खरीदना और पहनना दोनों ही बहुत महंगे पडते हैं।

गेहूं, चावल, गन्ने जैसी प्रमुख फसलों पर सरकार भिन्न रूपों में सब्सिडी देती है। अधिकतम फसल वर्षों में किसान कभी एक तो कभी दूसरी फसल उगाते हैं और संकट का सामना करते हैं। इसके लिऐ सरकार उन्हें आर्थिक सहायता दे देती है। सरकार द्वारा इस प्रकार का बैरोजगारी भत्ता देने से भी जो किसान नाराज या उत्तेजित होते हैं उनकी प्रतिक्रिया उग्र रूप धारण नहीं कर पाती। देशभर में किसान अलग–अलग फसलें उगाते हैं। कुछ फसलों का उत्पादन कभी बहुत अधिक तो कभी बहुत कम होता है और इसी प्रकार से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लाभ और क्षति भी अलग–अलग होती है, जैसे की कुछ किसान तो लाभ अर्जित करते हैं तो अन्यों को नुकसान उठाना पडता है। कहने का अर्थ यह है कि किसी एक समय में ही सभी किसान संकट में आऐं या उन्हें हानि हो तो ही वह एकजुटता में बंध पाऐंगे।

किसान दिवस के अवसर पर हमें इस वास्तविकता को जानने और महसूस करने की आवश्यकता है कि हम सभी किसान सरकार और शहरी समाज के विरूद्ध एक हारी हुई बाजी लड़ रहे हैं क्योंकि सरकार और उद्योगपति किसानों / उत्पादकों के स्थान पर उपभोक्ताओं के प्रति अधिक चिंतित हैं। दूर क्षितिज पर एक ऐसी चमक है कि इस सरकार को विरासत में कृषि अव्यवस्था मिली है, उसके कार्य किसानों को इतना उत्तेजित कर दें की समस्त किसान बगावत करने के लिऐ एकजुट हो जाऐं जिसके लिऐ चौधरी चरन सिंह जैसे एक किसान नेता की आवश्यकता है जो इस चिंगारी को शोला बना सके। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मेरा एक दिन में देखा हुआ सपना है जो सच्चाई से परे है।